□□□□ □□□□

जनसत्ता 14 सितंबर, 2014: कुलदीप कुमार ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार के उर्दू को दूसरी आधिकारिक भाषा बनाए जाने के फैसले को वैध करार देने पर 'हिंदी बनाम उर्दू' शीर्षक से (7 सितंबर) हिंदी और उर्दू के संदर्भ में प्रासंगिक मुद्दे उठाए हैं। गौरतलब है कि 1989 के सरकारी फैसले के विरुद्ध हिंदी साहित्य सम्मेलन ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में वाद दायर किया था और 1996 में वहां से हारने के बाद सर्वोच्च न्यायालय में अपील की थी। हिंदी साहित्य सम्मेलन के इस कदम पर हमें हैरान नहीं होना चाहिए। 1910 में काशी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में सम्मेलन की स्थापना ही तत्कालीन भाषा विवादों में हिंदी भाषा के समर्थन के उद्देश्य से हुई थी। कांग्रेस की तर्ज पर देश के विभिन्न शहरों में सम्मेलन की शाखाएं थीं और इसके वार्षिक अधिवेशन भी अलग-अलग शहरों में आयोजित होते थे, जिनकी महात्मा गांधी, राजेंद्र प्रसाद जैसे कई कांग्रेसी नेताओं ने अध्यक्षता भी की थी। नाम से भले यह साहित्य सम्मेलन था, लेकिन इसका उद्देश्य और इसकी गतिविधियां राजनीतिक अधिक थीं। नागपुर में हुए अधिवेशन के बारे में अज्ञेय ने 'विशाल भारत' में लिखा था कि ''सम्मेलन साहित्यिक न होकर एक पोलिटिकल जमघट था। ... घूम फिर कर सम्मेलन के आगे एक ही प्रश्न आ जाता था- राष्ट्रभाषा का प्रश्न।'' यानी सम्मेलन के लिए साहित्य गौण था और राजनीति प्रमुख। राष्ट्रभाषा के उस राजनीतिक मुद्दे ने हिंदी की साहित्यिक और अकादमिक क्षमता को प्रभावित किया था।

हिंदी साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभा ने उस समय हिंदी भाषा और साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण काम भी किए थे, जिनमें कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन भी सम्मिलित है (जो आज इन्हीं संस्थानों के पुस्तकालयों में दुर्दशा के शिकार हैं)। उस समय भी हिंदी लेखन में विविधता आज से किसी तरह कम नहीं थी। और, हर साल-दो साल में किसी एक भाषा से जुड़े लोग एक जगह जुटते हों, यह भी कोई कम बड़ी बात नहीं थी। बावजूद इसके इन दोनों संस्थाओं और खासकर सम्मेलन ने हिंदी की साहित्यिक और अकादमिक संपदा में वृद्धि और उसके संरक्षण का अपेक्षित काम नहीं किया। अपने संसाधनों और प्रयासों को वे हिंदी समर्थन और उर्दू-हिंदुस्तानी विरोध में लगाते रहे। यहां तक कि हिंदी क्षेत्र की भाषाओं के साहित्य पर बल देने और सम्मेलन के विकेंद्रीकरण करने के जनपद आंदोलन के प्रस्ताव को भी सम्मेलन नेतृत्व ने कभी लागू नहीं होने दिया, जबकि यह एक दूरदर्शी योजना थी कि उक्त भाषाओं से हिंदी समृद्ध होती। सम्मेलन ने जो नजरिया उर्दू और हिंदुस्तानी के प्रति अपनाया, वही स्थानीय भाषाओं के प्रति भी अपनाया। सम्मेलन नेतृत्व के इसी तरह के आग्रह के कारण महात्मा गांधी ने 1945 में सम्मेलन से नाता तोड़ लिया था।

दुखद है कि सम्मेलन के दृष्टिकोण में अब भी कोई बदलाव नहीं आया, जबकि आज इलाहाबाद के आसपास के क्षेत्रों में सम्मेलन की छवि एक शैक्षणिक संस्था की है। आज भी हिंदी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय या पुस्तकालय में ऐतिहासिक महत्त्व की कई पुरानी पुस्तकें और पत्रिकाएं धूल खा रही हैं और नष्ट होने के कगार पर हैं। यही स्थिति नागरी प्रचारिणी सभा की भी है। किसी भी शोधार्थी के लिए उस संदर्भ सामग्री तक पहुंच पाना बहुत ही मुश्किल काम हो जाता है। इस सामग्री के संरक्षण के लिए विद्वानों ने सरकार को ज्ञापन भी दिया था, लेकिन सरकार को क्या पड़ी है, यह सब करने की। कितना अच्छा होता कि अगर सम्मेलन मुकदमे में लगा संसाधनों का सदुपयोग अपने संग्रहालय में रखी ऐतिहासिक महत्त्व की बहुमूल्य सामग्री को संरक्षित करने में लगाता।

कुलदीप कुमार ने आंकड़ों के आधार पर बताया कि देश में उर्दूभाषी लोग अन्य भारतीय भाषाओं से कम नहीं हैं, जबकि आजादी के बाद से हिंदी समर्थकों की तरफ से यह तर्क दिया जाता रहा कि अब पाकिस्तान बन गया है तो उर्दू का यहां क्या काम। यह उसी तर्क का एक विस्तार था, जिसके तहत हिंदी को हिंदुओं और उर्दू को मुसलमानों की भाषा बनाया गया। सम्मेलन ने भी आर्य समाज की तर्ज पर हिंदी को हिंदुओं की भाषा मानते हुए भाषाई विभाजन की खाई को चौड़ा किया। उधर अंजुमन-ए-तरक्की-उर्दू जैसी संस्थाएं उर्दू को मुसलमानों की भाषा मान कर यही काम करती रही हैं। हिंदी समर्थकों ने हिंदी को संस्कृतनिष्ठ बनाया और उर्दू समर्थकों ने उर्दू को फारसीनिष्ठ। इन दोनों अतिवादी खेमों के विपरीत गांधी हिंदुस्तानी के पक्षधर थे, जिसका इन दोनों ही खेमों ने विरोध किया था।

हिंदी और उर्दू का यह विवाद उपनिवेशवादी शासन की विभाजनकारी नीतियों से उपजा था, जिसे उस समय के पढ़े-लिखे वर्ग ने हाथों-हाथ लिया और भाषा को सांप्रदायिक मुद्दा बनने दिया। लगभग दो सौ वर्षों का इतिहास गवाह है कि इस विवाद से दोनों भाषाओं ने अकादमिक और साहित्यिक स्तर पर बहुत कुछ हासिल नहीं किया, बल्कि अपने आप को सीमित ही किया। हिंदी देश की आधिकारिक भाषा बनी, पर उस हिंदी को समझने के लिए राजभाषा अधिकारी भी शब्दकोश लेकर बैठते हैं। इसलिए आवश्यक्ता है कि अब अतीत के उन विवादी आग्रहों को छोड़ दिया जाए और दोनों भाषाभाषी समुदायों के बीच संवाद बढ़ाया जाए।

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta